द्वितीय अध्याय

नारी और उसका स्वरूप

द्वितीय अध्याय

नारी और उसका स्वरूप

पूर्व अध्याय में हमने शिवानी के व्यक्तित्व और कृतित्व का विहंगमावलोकन किया है, उससे ज्ञात होता है कि शिवानी में निहित कथा - लेखिका में नारी की व्यथा - वेदना कूट-कूट कर भरी है। उनके साहित्य को पढते समय हम हरदम यह महसूस करते हैं कि नारी के समग्र रुप को समेटने की ललक लेखिका की कलम में है। यही कारण है कि उनके साहित्य के मूल्यांकन के पूर्व भूमिका के रुप में उन्होंने जिस नारी को अपने चिंतन-मनन का केन्द्र बनाया, उसके स्वरुप को जाना जाय।

शिवानी की कहानियों में चित्रित नारियों के विभिन्न प्रकार तथा समस्याओं पर विचार करने से पहले, नारी शब्द से तात्पर्य तथा उसका स्वरुप और स्थान आदि के बारे में जान लेना मैं आवश्यक समझती हूँ।

पुरुष और नारी मानव जाति के अस्तित्व के दो अनिवार्य अंग है। पुरुष और नारी के कारण ही परिवार की निर्मिति होती है और अनेक परिवारों का समाज बनता है। समाज की निर्मिति में नारी का उतना ही सहयोग है, जितना कि पुरुष का। अत: पुरुष की तरह नारी भी समाज का महत्वपूर्ण अंग है।

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है। साहित्य के बिना समाज का अस्तित्व संभव हो सकता है, परन्तु समाज के बिना साहित्य की निर्मिति असंभव है। इसलिए साहित्य में समाज का चित्रण होना स्वाभाविक है। इसी कारण कहा जाता है कि 'साहित्य में समाज का प्रतिबिंब होता है'।

भारतीय मनीषियों ने ` कवय: किं न पश्यन्ति ` अथवा ` कविरेव प्रजापति: ` कह कर साहित्य सर्जना की प्रतिभा को नैसर्गिक माना है। उन मनीषियों का यह कथन अक्षरश: सत्य है, इसमें सन्देह नहीं। आ.रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में ` प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता का चित्तवृत्ति का संचित कोश होता है। यह जीवन की आलो[चना] है। `

हर साहित्यिक विधा में प्रधान पात्रों के रूप में स्त्री और पुरुष का चित्रण होता है। स्त्री और पुरुष के चरित्र के बिना कोई भी साहित्यिक विधा पूर्ण नहीं हो सकती। अत: किसी साहित्यिक द्वारा चित्रित इन दो पात्रों का विचार ही उसके साहित्य का मूल्यांकन है।

साहित्य में प्राचीन समय से ही नारी की प्रतिष्ठा है। इस भारतवर्ष में आदि कवि वाल्मीकि की रचना रामायण से लेकर आज तक नारी का चित्रण साहित्य में बराबर होता आया है। यह क्रम जब तक साहित्य जीवित रहेगा, तब तक बना रहेगा और साहित्य तब तक बना रहेगा, जब तक मानव-जीवन अस्तित्व में रहेगा।

यह हम देखते हैं कि अभी तक स्त्रियों के बारे में पुरुषों ने ही लिखा है, कुछ अपवाद छोड कर। पहले से ही लेखन के क्षेत्र में पुरुषों की संख्या बहुत अधिक है, यह तो हर कोई जानता है, परन्तु नारी चरित्र पर जब कोई पुरुष लिखता है, तब एक प्रश्न यह किया जा सकता है कि ` क्या पुरुष स्त्री की आन्तरिकता को समझ सकता है ? ` यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि पुरुष स्त्री का मनोविज्ञान ` कुछ मात्रा ` में समझ सकता है और अगर वह पुरुष स्त्री के स्वभाव विशेष से पूर्ण रूपेण परिचित हो तब ही। कभी कभी यह भी देखा गया है कि पुरुष स्त्री का मनोविज्ञान समझने में अपने को असमर्थ समझता है। प्राचीन काल में कवि भर्तृहरि ने पुरुष द्वारा नारी को समझने की अपनी असमर्थता को स्वीकार किया है। भर्तृहरि ने अपनी अनुभूति पर यह मत व्यक्त किया है। ` शृंगार-शतक ` लिखने वाले राजा भर्तृहरि को ` वैराग्य-शतक ` लिखने के लिए मजबूर करने वाला नारी-चरित्र स्त्री के चरित्र की गहन रहस्यमयता स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

इसे ही सामने रख कर कहा गया है कि ` स्त्रीयश्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्
देवो न जानाति कुतो मनुष्य: । `
अत: स्पष्ट है कि स्त्री का सम्पूर्ण मनोविज्ञान न सही, उसके स्वभाव के कुछ सूक्ष्म पहलुओं का चित्रण ही साहित्य में होता आया है और हो रहा है।

नारी की आज की सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक तथा साहित्य में चित्रित स्थिति देखने पर यह जिज्ञासा जागृत होती है कि क्या नारी की ऐसी स्थिति पूर्वकाल से चली आ रही है ? इसका उत्तर नकारार्थी है। आगे हम देखेंगे कि नारी की स्थितियों में समय-समय पर अनेक स्थित्यंतर होते आए है।

नारी शब्द का अर्थ और स्वरुप --

जीवन का ही दूसरा नाम साहित्य है और साहित्य का दूसरा नाम जीवन। जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर है। नारी पुरुषत्व का आधार है। बिना उसके मानव अपने जीवन में बहुत बड़े अभाव का अनुभव करता है।

भारतीय परंपरा और हिन्दू शास्त्रों में नारी को ` श्री ` कहा गया है। नर के ` न ` और ` र ` दोनों ही वर्ण -हृस्व है तथा नारी के दोनों ही दीर्घ। इससे यही स्पष्ट होता है कि नारी का स्थान नर से ऊँचा है। हमारे शास्त्रों में नारी को ' अर्द्धांगिनी ' कहा गया है क्योंकि नारी को लेकर ही पुरुष पूर्णता प्राप्त करता है।

किसी भी समाज का सांस्कृतिक स्तर निश्चित करने के लिए या समझ लेने के लिए उस समाज में स्त्री या नारी का स्तर देखना आवश्यक है। अथवा यह कहने में कोई संदेह नहीं कि समाज में होनेवाला नारी का स्तर ही समाज के सांस्कृतिक स्तर को दर्शाता है। इस दृष्टि से वैदिक काल से लेकर बीसवीं

सदी तक भारत-वर्ष में नारी का स्तर क्या रहा अथवा कौन-कौन से रुप में ढलता गया यह देखना आवश्यक है।

(१) वैदिक काल --

वैदिक काल में नारी का सामाजिक स्तर या समाज में प्राप्त स्थान उच्च था, यह वादातीत है। इस बात की पुष्टि वैदिक आर्यों की देवताविषयक कल्पना से विचारों से,हो जाती है।

स्त्री की देवता रुप में कल्पना --

` वैदिक काल नारी की प्रतिष्ठा का सर्वोच्च काल था। वैदिक युग से ही भारतीयों ने नारी को देवी मान कर उसके प्रति श्रध्दा व्यक्त की है। नारी की देवी के रुप में कल्पना के कारण ही आर्यों ने अनेक देवियों की प्रतिष्ठा की।

१) उषा - प्रकृति के रहस्यमय और रमणीय व्यापारों की,

२) धृति - हृदय की भावनाओं की और गुणों की ,

३) लक्ष्मी - जीवन की सहायक परिस्थितियों की,

उन्होंने देवी के रुप में ग्रहण भी किया और अपनी समृध्दि के लिये उनकी अर्चना का विधान किया। `[१]

` नारी की इस महान प्रतिष्ठा के कारण ही प्राचीन काल में अलौकिक गुणों से सम्पन्न नारी को देवी का पद प्रदान किया जाता था और उसकी पूजा की जाती थी। अलौकिक रुप सौन्दर्य, अपरिमित ज्ञान तथा असीम शक्ति - संपन्न नारी को देवी का अवतार मान कर सरल हृदय भारतीयों ने मानव संस्कृति के आदि युग में नारी के प्रति अपनी श्रध्दा का परिचय दिया है। `[२]

वैदिक सूक्तिकर्ताओं ने सूक्तों में ` उषा ` स्त्री देवता की स्तुति की है। आर्यों ने ऐसा माना कि किसी भी देवता को स्त्री तत्व के बिना पूर्णत्व प्राप्त

---

१ अग्रवाल बिन्दु (डॉ.): हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण - पृ.२८८।

२ मठपाल,सावित्री(डॉ): जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - पृ.सं.१७।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

नहीं होता । ` अर्धनारी नटेश्वर ` की कल्पना इसी मान्यता की उपज है। उदा. ` इंद्र ` की पत्नी ` इंद्राणी ` अपनी सामर्थ्य से पूर्णत: जागरुक और परिचित है। वह एक जगह कहती है — ` हे देवता, इंद्र के बडप्पन का मूल मुझ में है। मैं सर्वशक्तिमान हूँ। मेरा पति मेरी सामर्थ्य को पहचाने। `

नारी को लेकर पुरुष पूर्णत्व प्राप्त करता है। संभवत: इसीलिए हमारे देवताओं के साथ भी स्त्रियों का नाम जुडा रहता है। यथा — सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर, लक्ष्मी-नारायण आदि। `[१]

वैदिक काल में स्त्री पुरुष समानता —

वैदिक काल में नारियों को भी आदर, मान था। वह पुरुषों की तरह स्वतंत्र बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन जी सकती थी। इस तरह की जिंदगी या जीवन जीने के लिए आवश्यक ऐसी शिक्षा लडकों के साथ-साथ लडकियों को भी दी जाती थी। सबसे महत्वपूर्ण बात या आज के संदर्भ में अचरज की बात यह है कि लडकों की तरह लडकियों का भी ` उपनयन ` किया जाता था। इस उपनयन विधि के बाद ही उनका अध्ययन प्रारंभ होता था। वैदिक सूक्तियों तथा नित्यनैमित्तिक सूक्तियों को वे मुखोद्गत करती थीं। पुरुषों की तरह वे सुबह-शाम संध्या करती थीं। उस वक्त विद्यार्थिनियों के भी दो प्रकार हुआ करते थे —

१) ब्रह्मवादिनी,
२) सद्योद्वाहा।

(१) ब्रह्मवादिनी-

ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेद-विद्या तथा ब्रह्म-विद्या का अध्ययन किया करती थीं। पठन के अलावा स्वतंत्र (रुप में) लेखन भी किया करती थीं। लोपामुद्रा, विश्ववारा। और घोषा इन विदूषियों द्वारा रचित ऋचाएँ ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं। ब्रह्मयज्ञ के समय जो तर्पण किया जाता था, उसमें सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी और वाचक्नवी इन विदूषियों के उल्लेख हैं।

---

१ मठपाल - सावित्री (डॉ) जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - मंगल - प्रकाशन जयपुर। - प.सं.१५।

<u>मैत्रेयी</u> - याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी आत्मज्ञान विषयक जिज्ञासा के कारण ज्ञात है।

<u>गार्गी</u> --

विदेह जनक राजा की राज सभा में होने वाले आध्यात्मिक वाद-विवाद या चर्चा-सत्रों में गार्गी प्रमुख रूप से रहती थी। एक प्रसंग में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को भी विवाद में हराया था, यह बहुश्रुत है ही।

<u>आचार्य नारी</u> -

वैदिक काल में न केवल पुरुष बल्कि नारियाँ भी अध्यापन का पद सँभालती थीं। उन्हें ' उपाचार्या ' अथवा ' आचार्या ' की संज्ञा दी जाती थी।

<u>सद्योद्वाहा</u> --

सद्योद्वाहा विद्यार्थिनी सोलह साल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अनुरूप पति के साथ विवाहबद्ध हो जाती थी। विवाह के बाद भी पत्नी के रूप में स्त्री का स्थान बहुत ऊँचा रहता था। पति को पत्नी की उपस्थिति के बिना यज्ञ करने का अधिकार नहीं था। यज्ञ कर्म में पत्नी का महत्वपूर्ण अंग कार्य रहता था। सामवेद की ऋचाएँ गाना, यज्ञ के पशु को स्नान डालना, यज्ञ के चावल कूटना, यज्ञवेदी की रचना करना आदि काम नारियों को ही करना पड़ता था।

वैदिक काल से सूत्र काल तक (अर्थात् ई.स.पूर्व पाँच सौ साल तक) पति की अनुपस्थिति में यज्ञ कार्य करने की अनुमति पत्नी को थी। सीतायज्ञ, रुद्रबली, रुद्रयाग जैसे कुछ यज्ञ केवल नारियाँ ही कर सकती थीं।

<u>सारांश रूप</u> में कह सकते हैं कि स्त्री के बिना गार्हस्थ्य जीवन की कल्पना नहीं थी। गृहस्थ स्त्री के साथ ही सफल गार्हस्थ्य जीवन पा सकता था, जी सकता था।

नारी सर्वश्रेष्ठ गुरु —

स्वतंत्र और सुबुद्ध नारियाँ अपनी सन्तान की सर्व श्रेष्ठ गुरु समझी जाती थीं।

'हजार अध्यापकों से पिता श्रेष्ठ और उससे हजार मात्रा में माता को श्रेष्ठ गुरु समझा जाय', इस अर्थ का एक सुभाषित प्रसिध्द है।

वैदिक काल में पुनर्विवाह —

दुर्भाग्यवश यदि स्त्री विधवा हो जाती तो भी स्त्री को अपने अनुरुप, सुयोग्य दूसरा पति चुनने की सुविधा या अनुमति वैदिक काल में थी। और यदि पुनर्विवाह के बिना वह वैधव्य की जिंदगी जीना पसंद करती थी, तो भी उसकी जिंदगी आधुनिक हिंदू विधवा की तरह कष्ट-प्रद नहीं होती थी।

(२) सूत्रकाल (इ.स.पूर्व ५०० साल तक) —

वैदिक काल में स्त्री को समाज में जो स्थान या स्तर या महत्व दिया गया था, वह धीरे-धीरे घटता गया। इसका कारण उस कालकी भौगोलिक व सांस्कृतिक स्थिति भी थी। इन स्थितियों ने स्त्री को गरिमामयी स्थान से किस तरह से पदच्युत कर दिया यह देखना आवश्यक है।

आर्य लोग उत्तर से दक्षिण प्रदेश की ओर बढ़ते गये। आर्येतर लोगों के सम्पर्क में आने पर उनकी मूल आर्य संस्कृति में फरक होता गया। जीवन-कलह व्यापक हो गया। इस बदली हुई परिस्थिति में पुरुष वर्ग को ज्यादा महत्व मिल गया और उनकी तुलना में स्त्रियाँ दुय्यम या कम स्तर की माने जाने लगीं। स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तिमत्व लुप्त-सा हुआ। वह रक्षणीय बन गयीं। उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी भी पुरुषों ने स्वीकार की। आर्येतरों के स्त्री विषयक दृष्टिकोण और विचार आर्य भी स्वीकारने लगे। इसीलिए बहुपत्नीत्व, नियोग, इस तरह की स्त्रियों का हीनत्व सिध्द करने वाली, स्त्रियों को निचले स्तर पर लाने वाली पध्दतियाँ आर्य समाज में रुढ हो गयीं।

सूत्रकाल में स्त्रियों का स्थान दुय्यम बनने के लिए (उनका स्तर नीचे लाने के लिए) एक और कारण कारणीभूत बन गया । वह महत्वपूर्ण कारण यह है, कि उसी समय वेद पठन और यज्ञ-कर्म के लिए स्त्रियों को अनधिकारी ठहराया गया । स्त्रियों को यज्ञ-कर्म के लिए अनधिकारी क्यों ठहराया गया, इसका मनोरंजक कारण है । यज्ञकर्म में सोमप्राशन एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता था । दक्षिण भारत के उष्ण प्रदेश में सोमप्राशन नाजुक प्रकृति के स्त्रियाँ सह नहीं पा सकती थीं । इसलिए ' तैतिरीय संहिता ' में नारियों के लिए सोमप्राशन वर्ज्य बताया गया । धीरे-धीरे यज्ञ कर्मों में भी उनका अधिकार कम किया गया । स्त्रियों के लिए जब यज्ञकर्म आवश्यक नहीं रहा तब वेदपठन भी अनुपयुक्त सिध्द हुआ । इस तरह कालान्तर में नारियाँ वेदों के लिए अनधिकारी मानी जाने लगीं ।

स्त्रियों को वेदपठन में अनधिकारी बताने का एक और सामाजिक कारण भी था । आर्य और अनार्यों के संबंध से विविध वर्णों की प्रजा (या समाज) का निर्माण होने लगा । वर्ण प्रथा रुढ हो गयी । चातुर्वर्ण्यों में ब्राह्मण-वर्ण सब वर्णों में श्रेष्ठ मान कर केवल उन्हें ही ज्ञान-कर्म करने का अधिकार रहा और वैश्य-शुद्र वेदों के अनधिकारी बतलाये गये । ठीक उसी तरह स्त्रियों का भी वेदाधिकार और ज्ञानाधिकार उनसे छिना गया । वेदों की शाखा-उपशाखाओं का विस्तार हुआ तथा यज्ञकर्म के मंत्र-तंत्र भी विस्तारित हुए । इस पूरी विद्या को प्राप्त करने के लिए उपनयन से लेकर विवाह तक केवल सात-आठ साल की कालावधि वेदाध्ययन के लिए स्त्री को मिल सकती थी । ऋग्वेद काल में इतना समय वेदाध्ययन के लिए काफी था किन्तु ब्राह्मण काल में वेदों का विस्तार हुआ । वेदमंत्रोच्चार करते समय छोटी-सी भूल भी पाठक का विनाश करती है — ऐसी एक धारणा प्रचलित थी, इसलिए भी वेदाध्ययन स्त्रियों के लिए वर्ज्य हुआ ।

<u>सारांश</u> — विवाह के पहले जो सात-आठ वर्ष मिलते उनमें विस्तारित वेदों का बिना किसी गलती का अध्ययन करना स्त्री के लिए असाध्य था, अत: वह कालांतर में वर्ज्य ठहराया गया ।

यज्ञकर्म से मुक्ति —

वेदपठन न करने से यज्ञकर्म में स्त्री का पुरुष के साथ जो बराबरी का स्थान था, वह भी न रहा। यज्ञकर्म में पुरुष की बाजू में बैठना, केवल औपचारिक रुप में रहा। यज्ञकर्म के लिए आवश्यक कर्तव्य या कर्म जो पहले स्त्री किया करती थी, वे कर्म अलग अलग पुरुषों को सौंपे गये। पुरुष की अनुपस्थिति में पुत्र या बंधु को यज्ञादि धर्मकृत्य करने का अधिकार दिया गया।

नारी का उत्तरोत्तर ढलता स्तर —

वेदाभ्यास के अधिकार से वंचित की जाने के कारण स्त्रियों के लिए उपनयन विधि भी औपचारिक रुप में रह गयी। वह स्त्री के विवाहपूर्व जैसे-तैसे रुप में संपन्न होने लगी।

(३) स्मृतिकारों के काल में नारी का स्वरुप या स्थिति —

मनु के काल में लडकियों का उपनयन होता था, किन्तु वह वेदमंत्रों के बिना। आगे याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार लड़कियों का उपनयन न किया जाए यह कह कर उनके विरोध में खड़े हो गए। कालांतर में स्त्रियों के लिए विवाह यही उपनयन जैसी विधि माने जाने लगी। उसको बताया गया कि पति सेवा यही गुरु सेवा है और घर का काम करना एक तरह का, एक प्रकार का यज्ञकर्म करना है।

इस तरह उपनयन विधि से और पर्याय रुप से वेदाभ्यास और धर्म-कर्माधिकार से हटायी जाने के कारण स्त्री की गणना शूद्रों के बराबर की जाने लगी। स्त्री के लिए नामकरणादि संस्कार भी अनावश्यक मान कर आगे तो यज्ञकर्म में औपचारिक रुप में भी स्त्री को पति की बाजू में बैठने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा मत व्यक्त किया गया।

मात्र जैमिनी जैसे विद्वानों ने यज्ञस्थल में पत्नी पति सन्निध आवश्यक बतायी, क्योंकि वेदों में बतलाए यज्ञकर्म दोनों के लिए आचरणीय थे। किन्तु स्मृतिकारों ने बतलाया कि अकेली पत्नी यज्ञकर्म नहीं कर सकती।

सारांश --

वैदिक काल में अकेली यज्ञकर्म करने वाली, वेद सूत्रों की रचयिता, ब्रह्मवादिनी स्त्री स्मृतिकाल में अविद्या बन गयी। फलस्वरूप उसकी मानसिक और बौद्धिक प्रगति कुंठित होकर वह पुरुष की भोगेच्छापूर्ति का केवल एक साधन-मात्र रह गयी। वैदिक तत्वज्ञान में विवाह और पुत्रोत्पत्ति प्रत्येक पुरुष का ध्येय और स्वर्गप्राप्ति का साधन कहा गया है। इसलिए स्त्री को मोक्षप्राप्ति में बाधा या रुकावट मानने का सवाल ही पैदा नहीं हुआ।

किन्तु उपनिषद, ब्राह्मण व स्मृतिकाल में हिन्दू धर्म मुख्य रूप से आध्यात्मिक बन गया। तब संसारजाल में फँसानेवाली, शरीर-सुख का मोह उत्पन्न करने वाली इस तरह की स्त्री की प्रतिमा बन गयी। स्त्री के मोहजाल में फँसने वाला पुरुष अपने मन को दोषी ठहराने के बजाय वह स्त्री को दोषी मान कर अपने सारे अवगुण उस पर थोपने लगा।

प्राचीन काल में यह मान्यता थी कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता वास करते हैं। मनु का यह कथन ----

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'। इसकी पुष्टि करता है। इसप्रकार भारतीय साहित्य में वैदिककाल से ही नारी सन्माननीया एवं साहित्य सृजन में केन्द्रस्थ रही है। ---- उसी मनुने 'मनुस्मृति' में पुरुष को माता, बहन और कन्या इन से बच कर रहने के लिए कहा है। स्त्री को स्वातंत्र्य देने के लिए स्त्री लायक नहीं, इस अर्थ का यह श्लोक प्रसिध्द है ----

'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।।

संक्षेप में-स्त्री स्वतंत्र रूप से रहने के योग्य नहीं।

फलत: स्त्री पारतंत्र्य की बेड़ियों में जकड़ी गयी। बालविवाहादि रूढ़ियों ने पारतंत्र्य के दु:खों के साथ मिल कर उसकी और दुर्दशा की। उपनयन के स्थान पर विवाह को मानने के कारण आठवाँ साल विवाह के लिए उत्तम माना गया। इतनी छोटी उम्र में लड़की विवाह के बारे में अपना मत व्यक्त करने में असमर्थ थी। तब माता-पिता के द्वारा बताये गृह में ब्याही जाने के अलावा उसके पास चारा नहीं था। इतनी कम उम्र में पिता के घर वह शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकती थी और विवाह के बाद स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व नष्ट हो जाता था। अत: उसके बौद्धिक विकास के लिए योग्य शिक्षा देने का सवाल ही उत्पन्न नहीं होता था। पतिगृह में स्त्री पति की दासी बन कर रहती थी। योग्य शिक्षा के अभाव के कारण घर में और धर्मकृत्यों में स्त्री को मान नहीं था। पति ही उसका 'देवता' बना। पति दुर्गुणी, व्यभिचारी होने पर भी उसको 'देवतारूप' में पूजना, और पति की मृत्यु के बाद में उस व्रत के पालन का कठोर बंधन स्त्री पर डाला गया।

वैदिक काल में प्रचलित पुनर्विवाह की पद्धति मनु के काल में बंद हो गयी। आठवें साल में ब्याही गई लड़की अगर जल्दी वैधव्य दशा को प्राप्त हो जाती तो भी लड़की को जबरदस्ती संन्यस्त वृत्ति की दीक्षा दी जाने लगी। इधर पुरुष को प्रथम पत्नी के मरणोपरान्त या उसके रहते हुए भी चाहे जितने विवाह कर सकने की सहलियत दी गई। सती प्रथा भी स्त्रियों के लिए यातनामयी बन गई थी।

सती प्रथा --

स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व किस तरह पूर्ण रूपेण नष्ट हुआ था, इसका उत्कृष्ट उदाहरण यह प्रथा प्रस्तुत करती है।

(४) मनुस्मृति के बाद --

मनुस्मृति के बाद में लिखे गए बाल्मीकि रामायण, कालिदास प्रभृती के काव्य तथा महाभारतादि इतिहास में कुछ स्वतंत्र तथा कर्तव्यदक्ष नारियों के आदर्श रूप चित्रित हुए हैं। किन्तु इनमें चित्रित या आदर्शवादी नारियाँ बहुतांशत: क्षात्रिय जाति की हैं। उदा. 'उत्तरा' जैसी लड़कियाँ विविध कलाओं की शिक्षा

प्राप्त करती थीं , सावित्री- दमयंती जैसी लडकियाँ स्वयंवर रचती थीं , कैकेयी - जैसी नारियाँ पति के साथ युध्द पर जाया करती थीं, द्रौपदी- जैसी नारियाँ वाद-विवाद में पुरुषों के साथ धर्म चर्चा भी किया करती थीं। ओडिसा की त्रिभुवनदेवी जैसी स्त्री स्वतंत्र रुप में राज कारोबार भी करती थीं।

(५) बौद्धकाल में नारी का स्वरुप —

इ.स.पूर्व पाँच सौ वर्ष बाद बौध्द धर्म उदित हुआ, उसने हिंदू धर्म की बुनियाद पर कठोर प्रहार किया। संन्यास बौध्द धर्म का प्राण तत्व था। गौतम बुध्द पहले स्त्रियों के बारे में उदास,तटस्थ थे। बाद में उन्होंने अपनी माता के अनुरोध पर स्त्रियों को परिव्रज्या लेने की अनुमति दी।

इस अनुमति ने हिंदू धर्म द्वारा स्त्री पर थोपा गया,पारतंत्र्य का बंधन टूट गया। गौतम बुध्द की पत्नी यशोधरा और उसकी बुआ उसकी शिष्य बन गयी। ब्राह्मणों ने स्त्रियों को धार्मिक और व्यावहारिक बंधनों में जकडा था, वे सारे बंधन तोड कर हजारों स्त्रियाँ गौतम बुध्द की शिष्या बन गयीं।

ये शिष्याएँ (भिक्षुणियाँ) शिष्यों की तरह अपने स्वतंत्र मठ के व्यवहार देखती थीं। इस तरह बौध्द धर्म ने स्त्रियों को पुरुषों के बराबर का स्थान देकर व्यावहारिक और पारमार्थिक हक्क भी प्रदान किये।

बौध्द धर्म का पतन —

बौध्द धर्म की हिंदू धर्म पर विजय क्षणभंगुर सिध्द हुई। बुध्दिमान ब्राह्मणों को (बौध्द धर्म द्वारा) यह अपमान और पराजय बहुत काल तक स्वीकारना असंभव था। उन्होंने बौध्द भिक्षु और भिक्षुणियों में फैले अनाचार का फायदा उठाते हुए पुन: हिंदू धर्म का विजयी झंडा फहराया। इनमें शंकराचार्य जैसे दिग्विजयी विद्वानों का महत्वपूर्ण हाथ रहा। स्त्रियों का व्यावहारिक और आध्यात्मिक स्वातंत्र्य बौध्द धर्म के साथ साथ ही नष्ट हुआ

और उन्नीसवीं शती तक उसकी उत्तरोत्तर दुर्दशा होती गयी ।

मुस्लिमों का भारत पर आक्रमण --

इ.स.ग्यारहवीं शती से मुसलमानों ने हिंदुस्तान पर आक्रमण करना शुरु किया । तब तो स्त्रियों का रहा सहा स्वातंत्र्य भी नष्ट हुआ । मुस्लिम राज्य - कर्ताओं की बुरी नजर से बचाने के लिए हिंदू अपने स्त्रियों को परदे में छिपाने लगे और जल्द से जल्द शादी कर देने के उत्साह में पालने में ही विवाह कर देते थे ।

बाल विवाह और परदा प्रथा इन दो प्रथाओं के कारण स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक विकास रुक गया । इसके अलावा मुस्लिमों के बहुपत्नीत्व का प्रभाव भी हिंदू समाज पर हुआ ।

भक्तिकाल में भी नारियों की स्थिति शोचनीय ही रही और परिवार तथा समाज के अत्याचारों से पीड़ित होकर कितनी ही नारियाँ वैरागिनी, संन्यासिनी बनी दिखाई देती है । उस काल की नारी की दयनीय स्थिति के लिए तुलसीदास का निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है --

' ढोल गंवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताडन के अधिकारी । '

रीतिकाल में तो नारी केवल भोग विलास का साधन मात्र बन गई ।

(६) आधुनिक काल - (इ.स.१९०० से अब तक) --

अंग्रेजों ने १८५७ में दिल्ली जीत कर हिन्दुस्तान पर अपना शासन जमाया । हिन्दू जनता तो परतंत्र हुई किन्तु हिन्दू नारियों के लिए अंग्रेजी शासन द्वारा राजकीय और सामाजिक स्वातंत्र्य मिलने के कारण वह उपकारक सिध्द हुआ । अंग्रेजों के स्त्री विषयक उदार दृष्टिकोण ने भारतीय युवा पीढ़ी को प्रभावित किया । इस वर्ग में राजा राममोहन राय, पं.ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती,

लोकहितवादी म.गो.रानडे, आगरकर,फुले,कर्वे जैसे समाज सुधारक निर्माण हुए और उन्होंने हिन्दू समाज में स्थित बाल-विवाह ,विधवा-विवाह-निषेध,अज्ञान तथा दुष्ट रुढ़ियों के निर्मूलन के लिए भरसक प्रयत्न किए। ब्राह्मोसमाज,आर्यसमाज, मिशनरी कार्यकर्ता तथा कर्वे आदि समाज सुधारकों ने स्त्री-शिक्षा का क्षेत्र विस्तारित किया। परिणाम स्वरुप स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद नारी का स्वरुप बदलता हुआ नजर आने लगा। नारी ने विविध क्षेत्रों में अपनी प्रगति दिखा दी --

१) शिक्षा के क्षेत्र में,
२) कानून के क्षेत्र में,
३) अर्थार्जन के क्षेत्र में।

(१) शिक्षा के क्षेत्र में --

१९वीं शती तक हमारे देश में सुसंस्कृत,उच्च वर्ग के परिवारों की स्त्रियाँ बहुश्रुत, प्रगल्भ थीं,किन्तु वे पढ़-लिख नहीं सकती थीं।

इ.स.१८२३ में पहली मिशनरी पाठशाला शुरु हुई, १९१५ तक स्त्री-शिक्षा ने जोर पकड लिया। आज के युग में स्त्रियों के लिए ऐसा एक भी क्षेत्र नहीं,जिसे शिक्षित स्त्रियों ने पादाक्रांत न किया हो।

(२) कानून के क्षेत्र में --

सुधारित कानून ने स्त्री के 'शुध्द भोग्या वस्तु' के रुप में आमूलाग्र परिवर्तन लाया। इ.स.१९५५-५६ में हिन्दू कोड बिल पास हुआ। उससे व्यक्तिगत,सामाजिक विकास दृष्टि से महत्वपूर्ण ऐसे अधिकार महिलाओं को दिए गए। साथ ही औद्योगिक क्षेत्र में स्त्री-मजदूर विषयक कानून ने समाज में अपने अलग अस्तित्व का एहसास नारी को दिलाया।

(३) अर्थार्जन के क्षेत्र में —

स्त्री को उपर्युक्त क्षेत्रों में स्वातंत्र्य और समानता मिलने से उसकी जीवन के स्पर्धा क्षेत्रों में पुरुषों से आगे जाने की संभावना बढ़ी । इस के कारण उसका स्त्रीत्व नष्ट हो जायेगा, मातृत्व, बच्चों का संगोपन, गृहस्थी आदि जिम्मेदारियाँ को निभा नहीं सकेगी, ये कारण बताये गये ।

इस कथ्य में तथ्य की अपेक्षा भावना अधिक थी । आर्थिक परिस्थिति के कारण स्त्रियों को नौकरी करनी पड़ीं । मध्यम वर्ग के लिए नौकरी की आवश्यकता परिस्थितिवश बढ़ती गयी ।

नारी अर्थार्जन करने पर समाज के एक उत्पादक और उपयुक्त इकाई के रुप में उसके ऊपर जो सामाजिक जिम्मेदारियाँ आ पड़ीं, उसको जिम्मेदारी से निभाने लगी । नौकरी में स्त्री-पुरुष भेद करना, कानूनी अपराध बताया गया । १९२३ के कानून से स्त्रियों को कोर्ट में वकालत करने का भी अधिकार मिल गया ।

आज के युग की नारी —

तुलसीदास की ` ढोल गंवार .... वाली धारणा को महिलाओं ने अपनी कार्यशक्ति, ज्ञानशक्ति से काफी हद तक समाप्त कर दिखाया है ।

नारी का स्वातंत्र्योत्तर स्वरुप —

उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने देश को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करने के लिए नारी-स्वतंत्रता को आवश्यक ठहराया । इसलिए महात्मा गांधी ने देश की उन्नति के लिए स्त्री जाति की उन्नति आवश्यक मानी थी । समाज सुधारकों ने विविध संस्थाओं द्वारा नारी-विकास के लिए प्रयत्न किए, तो साहित्यकारों ने अपनी साहित्य रचनाओं द्वारा नारी को पुन: वैदिककाल के प्रतिष्ठित पद पर आसीन करने की चेष्टा की । साहित्यकारों ने नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं तथा सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज-प्रथा,

A 9713

अशिक्षा एवं आर्थिक परतंत्रता आदि समस्याओं को उजागर किया ।

नारी को जो प्रतिष्ठा मान-सम्मान मिलना चाहिए वह आज भी पूर्ण रूप से नहीं मिल पाया है। प्रेमचन्द जी ने तो बहुत पहले ही नारियों को श्रेष्ठ माना है और इस संदर्भ में उनका कथन है कि --

" मैं प्राणियों के विकास में (नारी को) पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ जैसे - प्रेम,त्याग और श्रध्दा,हिंसा,संग्राम और कलह से श्रेष्ठ हैं। ....स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। " [१]

जिस परिवार,समाज और देश में नारियों को मान नहीं दिया जाता, उस परिवार ,देश और समाज को रसातल जाते देर नहीं लगती। नारी ही व्यक्ति को बनानेवाली होती है, व्यक्ति से ही देश और समाज बनता है। इस प्रकार समाज की जो महत्वपूर्ण इकाई नारी है, उसको मान-सम्मान देना ही पड़ेगा। उपन्यास सम्राट और श्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र उनसे आगे बढ़कर दुनिया का आधार ही नारी को मानते हैं --" स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है, घर को कुटुम्ब बनाती है, जाति और देश को भी,मैं कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है, और फिर उन्हें बिगाड़ती भी वही है। .... धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड़ भी वही है .... दुनिया स्त्री पर टिकी है। " [२]

नारी व्यक्ति और समाज के स्तर पर अनेक भूमिकाओं को एक साथ ही निभाती है। एक ही समय वह माता,बहन,पत्नी,पुत्री,प्रेयसी आदि रूपों में सजीव, क्रियाशील रहती है। कहानियों में, उपन्यासों में वह किसी न किसी रूप में चित्रित होती है।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी का तो यही विश्वास था कि नारी की प्रेरणा के बिना कोई भी बड़ा नहीं बन पाया है। नारी ही वह इकाई है, जो

---

१ प्रेमचन्द - गोदान - पृ.सं.१६१।

२ जैनेन्द्र - परख पृ.सं.४९

निराशा के पलों में आशा की किरण बन कर मानव को नव-उत्साह प्रदान करती है -- ' स्त्री के बिना संसार एक अँधेरा कूप-सा है। स्त्री ही अलंकारों में सर्वोत्तम अलंकार है। उसके बिना कविता भी रसीली नहीं होती। यह सुन्दरता की एक मृदुल स्त्रोतस्विनी है। सौन्दर्य की एक अपूर्व खान है।'[१]

इसी प्रकार की भावना हमारे राष्ट्रपति डॉ.राधाकृष्णन् के निम्न कथन से व्यक्त हुई है -- ' जब आकाश बादलों से काला पड़ जाता है, भविष्य का मार्ग घने वन से होता है, जब हम अन्धकार में बिल्कुल अकेले होते हैं, प्रकाश की एक किरण भी नहीं दिखाई पड़ती और सब ओर कठिनाईयाँ होती हैं, तब हम अपने आपको किसी प्रेममयी नारी के हाथ में छोड़ देते हैं।'[२]

नारियों की इस संक्षिप्त गाथा को जानने के पश्चात मेरे विचार में यही निष्कर्ष निकलता है कि दिन-ब-दिन नारी की स्थिति में परिवर्तन होता आया है। आज वह शोषण से मुक्त होने व बराबरी का दर्जा प्राप्त करने के लिए हर क्षेत्र में पुरुष से स्पर्धा कर रही है। अपने को अबला से सबला की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने के लिए निरन्तर संघर्षरत है। परन्तु क्या वह इस संघर्ष में कुछ हद तक सफल हो पायी है ? अभी भी उसके उत्पीड़न-शोषण में कमी नहीं आयी है। आये दिन आने वाले भयावह समाचारों से पुरुष समाज का नारी के प्रति क्रूर व्यवहार स्पष्ट हो जाता है। सारे प्रयासों के बावजूद माँ, पत्नी और बेटी इन तीन रूपों में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। फिर भी मन में एक आशा है कि नारी समाज में अपने योग्य स्थिति को प्राप्त करके ही रहेगी और पुरुषों को भी उसकी योग्यता और कार्यक्षमता का लोहा मानना भी पड़ेगा।

---

१. पन्त, सुमित्रानन्दन : पन्त ग्रंथावली, पृ.सं. 5।

२. राधाकृष्णन (डॉ०) : धर्म और समाज, पृ.सं. 163

निष्कर्ष

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध का विषय ही नारी समस्याएँ है,अत: इस अध्याय में प्रारंभ से आज तक नारी की स्थिति के बारे में ये मुद्दे प्राप्त हुए हैं --

शिवानी की कहानियों में नारियों के विभिन्न रुप तथा समस्याएँ चित्रित की गई हैं, अत: उन्हें जानने से पहले नारी शब्द से तात्पर्य,नारी का स्वरुप और स्थान आदि के बारे में जान लेना आवश्यक है।

१) समाज की निर्मिति में नारी का उतना ही सहयोग होता है,जितना की पुरुष का।

२) साहित्य में प्राचीन समय से ही नारी की प्रतिष्ठा है जैसे आदि कवि वाल्मीकि के रामायण से लेकर आज तक नारी का चित्रण साहित्य में बराबर होता है।

३) किसी भी समाज का सांस्कृतिक स्तर निश्चित करने के लिए उस समाज में स्त्री का स्तर देखना आवश्यक होता है।

४) वैदिक काल में नारी का सामाजिक स्तर उच्च था, यह वादातीत है। इस बात की पुष्टि नारी को अर्धांगिनी कहना,या देवताओं के साथ स्त्री का नाम जुडा होना जैसे (सीताराम,गौरीशंकर,राधेश्याम) आदि से होती है।

५) सूत्र काल (इ.स.पूर्व ५०० साल तक) में यह महत्व या स्थान धीरे धीरे घटता गया।

६) स्मृतिकारों के काल में नारी के लिए पति-सेवा और गृह-कर्म आवश्यक मान कर शूद्रों के बराबर माना जाने लगा।

७) भक्तिकाल में नारी की शूद्र और पशु के साथ तुलना की जाती थी। रीतिकाल में वह 'शुध्द भोग्य वस्तु' रह गई।

आधुनिक युग में समाज सुधारकों ने द्वारा हिन्दू समाज में स्थित बाल-विवाह, विधवा विवाह,अज्ञान तथा दुष्ट रुढ़ियों के निर्मूलन के लिए प्रयत्न किये गये। स्त्री-शिक्षा पर भी बल दिया गया जिसके परिणामस्वरुप शिक्षा,कानून तथा अर्थार्जन के क्षेत्र में स्त्री ने अपनी उन्नति कर ली।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी ने तुलसीदास की ढोल ,गंवार,शूद्र,पशु, नारी ... वाली धारणा को अपनी कार्यशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से काफी हद तक समाप्त किया। प्रेमचंद,जैनेन्द्र,,सुमित्रानन्दन पन्त प्रभृती साहित्यकारों ने स्त्री को साहित्य में गरिमामयी स्थान पर बहुत पहले ही प्रतिष्ठित किया था। धीरे-धीरे नारी की स्थिति में परिवर्तन जरुर हुआ है। आज वह शोषण से मुक्त होने व बराबरी का दर्जा प्राप्त करने के लिए हर क्षेत्र में पुरुषों से स्पर्धा कर रही है।

भारतीय नारी की वास्तविक दशाओं का चित्रण करते हुए श्रीमती आशारानी व्होरा जी लिखती है कि " आज मूल प्रश्न नारी और पुरुष की हर क्षेत्र में बे सोच बराबरी का नहीं, प्रश्न है - स्त्री की मानवी रुप में मान्यता का और स्त्री के रुप में ही अपनी स्थापना और रक्षा का। "

शिक्षित भारतीय नारी व्यक्तित्व-संपन्नता के बल पर ही अपनी अस्मिता की स्थापना और रक्षा कर सकती है।

••